समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में व्यवस्था विरोध का स्वर

डॉ. अशोक कुमार यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर (VSY)
राजकीय महाविद्यालय पावटा, (राज.)

साहित्य लेखन की अनेक विधाएं होती हैं। इनमें कविता भी एक प्रसिद्ध विधा है। ग़ज़ल, गीत और दोहे आदि कविता विधा के ही काव्य रूप माने जाते हैं। हिन्दी में ग़ज़लें लगभग तेरहवीं सदी से प्रचलन में आईं। इस दौरान अमीर खुसरो ने सर्वप्रथम हिन्दी में ग़ज़लें लिखना प्रारम्भ किया। अमीर खुसरो को प्रथम हिन्दी ग़ज़लकार माना जाता है। इस प्रकार से हिन्दी ग़ज़ल लेखन का यह सिलसिला कई सदियों तक चलता रहा लेकिन हिन्दी में ग़ज़लों को वास्तविक पहचान नहीं मिल पायी। बीसवीं सदी में आपातकाल के दौरान दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल को अपने लेखन का माध्यम बनाया। उस समय समाज राजनीतिक बर्बरता का शिकार था। समाज में राजनीतिक तानाशाही चरम पर थी। समाज को एक नई दिशा व दशा की जरुरत थी। दुष्यन्त कुमार ने अपने समय तथा समाज की जनभावनाओं को समझा और उन्हें अपनी ग़ज़लों का माध्यम बनाया। दुष्यन्त कुमार की इन ग़ज़लों से आमजन काफी प्रभावित हुआ। इससे समाज में व्यवस्था विरोध और परिवर्तन की आवाजें उठने लगी। इस कारण से दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें मील का पत्थर साबित हुई। आगे चलकर ग़ज़लकारों ने इन्हीं की ग़ज़ल लेखन शैली को अपनाया। दुष्यन्त कुमार को समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का प्रथम ग़ज़लकार माना गया है तथा इन्हीं से समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा की शुरुआत स्वीकार की गई है। आज देशभर में कई सैकडों की संख्या में ग़ज़लकार हिन्दी में ग़ज़लें लिख रहे हैं। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में व्यवस्था विरोध का मुखरित स्वर देखने को मिलता है। उनकी ग़ज़ल का एक शेर द्रष्टव्य है –

''कैसे मंजर सामने आने लगे हैं,
गाते–गाते लोग चिल्लाने लगे हैं।''[1]

प्रस्तुत शेर में बीसवीं सदी के आठवें दशक की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विरोध का स्वर है। वास्तव में जब अत्याचार और अन्याय की सीमाएं बढ़ती हैं तो अवश्य ही उसके खिलाफ़ आवाजें उठती हैं। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़ल का एक अन्य शेर जिसमें व्यवस्था विरोध का स्वर व्याप्त है –

''हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,

हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।''[2]

दुष्यन्त कुमार के इस शेर में भी व्यवस्था विरोध का स्वर मौजूद है। समाज को अभिप्रेरित करने में साहित्यकार का बहुत बड़ा योगदान होता है। साहित्यकार के शब्द अपनी छाप दूर तक बिखेरते हैं। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों का प्रभाव भी अत्यन्त गहरा दिखाई देता है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में व्यवस्था विरोध की खुलकर अभिव्यक्ति की है। इसके अलावा गोपालदास सक्सेना 'नीरज' ने भी अपने समय की शासन व्यवस्था एवं उसमें पनपे भ्रष्टाचार को अपनी ग़ज़लों का माध्यम बनाया है। उनकी ग़ज़ल का एक शेर है –

''छीनता हो जब तुम्हारा हक कोई, उस वक्त तो

आँख से आँसू नहीं, शोला निकलना चाहिए''[3]

वास्तव में जब समाज में दुराचरण और अन्याय बढ़ते हैं तो अवश्य ही उनके खिलाफ़ आवाज उठती है। अपने समय की इन समस्त पीड़ाओं और बेचैनियों को आमजन तक पहुँचाने में एक साहित्यकार/ग़ज़लकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार अपनी इस भूमिका को बखूबी से निभा रहे हैं। आज देशभर में भ्रष्टाचार का माहौल है। भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी जम चुकी हैं कि उससे आम आदमी हताहत है। इसी संदर्भ में ओमप्रकाश यति कहते हैं कि –

''रोज़ वसूली कोई न कोई, खाद कभी तो बीज कभी

इज़्ज़त की कुर्की से हरदम डरते आए बाबूजी।''[4]

भ्रष्टाचार और बेईमानी ने इंसान को इंसानियत से दूर किया है। इंसान चंद पैसों के लालच में अपना ईमान बेच देता है। आज देश में मेहनतकश आदमी अपने आप को डरा–डरा सा महसूस करता है। दिनोंदिन देश में बड़े–बड़े घोटाले हो रहे हैं। घोटालेबाज कहीं न कहीं सत्ता व्यवस्था से ही जुड़े हुए लोग हैं, जो खुलेआम घोटाले एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे हैं। इसी संदर्भ में अदम गोंडवी का एक शेर द्रष्टव्य है –

''जो डलहौजी न कर पाया वो ये हुक्काम कर देंगे
कमीशन दो तो हिन्दुस्तान को नीलाम कर देंगे।''[5]

वास्तव में हम देखें तो पिछले कुछ वर्षों में देश में इतने बड़े घोटाले हुए हैं, जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों ने इन घोटालों और घोटालेबाजों का पर्दाफाश किया है। देश का मीडिया इन भ्रष्टाचारियों एवं घोटालेबाजों को बचाने की फिराक में लगा हुआ है। मीडिया सच्चाई को दबाने की कोशिश कर रहा है, जिससे सच्चाई आमजन तक पहुंच ही नहीं पा रही है। इसी संदर्भ में राम मेश्राम का एक शेर है –

''देखता जा कि तेरे सामने आता क्या है
मीडिया हमको लगातार दिखाता क्या है''[6]

देश का मीडिया आमजन को वास्तविकता नहीं दिखा रहा है। आज देश में बेरोजगारी और गरीबी का माहौल है। आमजन को भूख और शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। समकालीन समय तथा समाज की इन ज्वलंत समस्याओं का जिक्र डॉ. हनुमंत नायडू ने भी अपनी ग़ज़लों में किया है। उनका एक शेर द्रष्टव्य है –

''भाषण छपा है देश में खुशियाँ बरस रहीं
लेटे हैं खाली पेट हम अखबार ओढ़कर''[7]

निःसंदेह आज हम जैसा सोचते हैं, वैसी समाज की स्थिति नहीं है। आज के समाज की स्थिति बड़ी दयनीय है। समाज में अनेक समस्याएं जैसे भूख, बेरोजगारी,

गरीबी, लाचारी और भ्रष्टाचार आदि व्याप्त हैं। समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में इन समस्त समस्याओं के खिलाफ़ बुलन्द आवाज देखने को मिलती है। समकालीन ग़ज़लकार राजनीतिक व्यवस्था के साथ–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, न्यायिक और पर्यावरणीय व्यवस्था का भी खुलकर विरोध कर रहे हैं। आज की हिन्दी ग़ज़लों में व्यवस्था विरोध का प्रखर स्वर देखने को मिलता है। डॉ. शिवशंकर मिश्र देश की धार्मिक व्यवस्था का जिक्र अपनी ग़ज़लों में करते हैं। उनका एक शेर है –

''ये हिन्दू–मुसलमान सिख–ईसाई जो भी हैं
सब खोदते हैं रोज़ एक खाई जो भी हैं''[8]

वास्तव में देश में साम्प्रदायिकता का माहौल है। आज देश में लोग जाति और धर्मों में बंटे हुए है। अलग–अलग जाति और धर्म होने से सबके अपने–अपने मतभेद हैं, इससे समाज में ईर्ष्या एवं द्वेष का माहौल बना है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। आज के समाज में भूख और गरीबी से आमजन त्रस्त है। लोगों को रोजमर्रा की वस्तुएं जुटाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसी संदर्भ में विनय मिश्र का एक शेर है –

''भूख की बेचैनियों को गुनगुनाता हूँ
मैं तुम्हें सच का सही चेहरा दिखाता हूँ''[9]

समकालीन हिन्दी ग़ज़लें अपने समय की साक्षी दृष्टिगत होती हैं। इनमें अपने समय और समाज की प्रत्येक समस्याओं का जिक्र देखने को मिलता है। ज़हीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में सांस्कृतिक व्यवस्था का जिक्र किया है कि आज के इस भूमण्डलीकरण के दौर में कैसे महानगरों का विकास हुआ है। इस महानगरीय जीवन में किस प्रकार से मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का विनाश हुआ है।

''ये महानगरीय–जीवन का करिश्मा है,
भूल बैठे हम सुखी परिवार की भाषा''[10]

आज के इस दौर में हमारे सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का काफी ह्रास हुआ है। आज भाईचारा, त्योहार, उत्सव, पर्व तथा मेले आदि सब नाममात्र के ही रह गए हैं। समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में सांस्कृतिक व्यवस्था के साथ–साथ न्यायिक व्यवस्था के प्रति भी विरोध का स्वर देखने को मिलता है। इसी संदर्भ में डॉ. किशन तिवारी की ग़ज़ल का एक शेर है –

''जब समय पर न्याय मिल पाए नहीं
किस तरह कानून का पालन करें''[11]

निःसंदेह हम देखें तो आज हमारी कानून व्यवस्था काफ़ी लचीली हो गई है। पीड़ित व्यक्ति को समय पर न्याय नहीं मिल पा रहा है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में आज की इस न्यायिक व्यवस्था के प्रति विरोध देखने को मिलता है। इसके अलावा समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में पर्यावरणीय व्यवस्था का भी जिक्र किया गया है। इसी संदर्भ में रामचरण 'राग' की ग़ज़ल का एक शेर द्रष्टव्य है।

''हरियाली पर चलते जब से रोज़ कुल्हाड़े हैं
तब से हर जंगल–पर्वत के जिस्म उघाड़े हैं''[12]

भूमण्डलीकरण के इस दौर में पर्यावरण भी काफी प्रभावित हुआ है। आज यदि हम देखें तो समय पर बरसात नहीं हो पा रही है। दिनोंदिन प्रकृति का तापमान बढ़ रहा है। भूमण्डलीकरण के प्रभाव से न सिर्फ पर्यावरण बल्कि हमारी आर्थिक व्यवस्था पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। रामकुमार कृषक वर्तमान समय की बिगड़ती आर्थिक व्यवस्था पर अपनी पीड़ा व्यक्त करते हैं। उनका एक शेर द्रष्टव्य है –

''है खरीदारी हमारी सब उधारी पर
बेचने वाला हमें बिकना सिखाता है''[13]

समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में आज के समय तथा समाज की वास्तविकता देखने को मिलती है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार जीवन से जुड़ी प्रत्येक व्यवस्था प्रणाली

पर पैनी दृष्टि बनाए हुए हैं। उनकी ग़ज़लों में व्यवस्था विरोध का स्वर स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है।

विशेष :–

समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में व्यवस्था विरोध का स्वर दृष्टिगत होता है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार अपने समय तथा समाज से जुड़ी प्रत्येक व्यवस्थाओं जैसे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, न्यायिक एवं पर्यावरणीय आदि का जिक्र अपनी ग़ज़लों में करते हैं। उनकी ग़ज़लें समकालीन समय की प्रतिबिम्ब प्रतीत होती हैं।

संदर्भ सूची

1. साये में धूप, दुष्यन्त कुमार, पृ. 14
2. हिन्दी ग़ज़ल के नवरत्न, डॉ. मधु खराटे, पृ. 33
3. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल में समसामयिकता, डॉ. मस्के सन्तोष विष्णु, पृ. 79
4. हिन्दी ग़ज़ल के नवरत्न, डॉ. मधु खराटे, पृ. 210
5. हिन्दी ग़ज़ल का परिदृश्य, सं. डॉ. मधु खराटे, पृ. 175
6. दसख़त, सं. जीवन सिंह, पृ. 75
7. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल, डॉ. मधु खराटे, पृ. 167
8. हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, हरेराम समीप, पृ. 165
9. सच और है, विनय मिश्र, पृ. 17
10. हिन्दी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, डॉ. मधु खराटे, पृ. 165
11. समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार : एक अध्ययन, हरेराम नेमा 'समीप', पृ. 315
12. उम्मीद का मौसम, रामचरण 'राग', पृ. 102
13. समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार : एक अध्ययन, हरेराम नेमा 'समीप', पृ. 185